

[2021] 5 एस सी आर 350

के. पी. नटराजन और अन्य।

बनाम

मुतालममल और अन्य।

(2021 की विशेष अनुमति याचिका (सी) संख्या 2492)

16 जुलाई, 2021

[इंदिरा बनर्जी और वी. रामासुब्रमणियन, न्यायाधीशगण]

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 : आदेश 32, नियम 3 – याचिकाकर्ता द्वारा विनिर्दिष्ट पालन हेतु वाद दायर किया गया – उत्तरदाता-प्रतिवादियों ने अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थिति दर्ज कराने के पश्चात् एकपक्षीय रूप से अनुपस्थित रहे – वादपत्र में तृतीय प्रतिवादी को अवयस्क बताया गया था, जिसका प्रतिनिधित्व उसके निकट मित्र (अवयस्क के पिता) द्वारा किया जा रहा था – याचिकाकर्ताओं ने वादपत्र के साथ आदेश 32, नियम 3 के अंतर्गत एक आवेदन भी दायर किया था, जिसमें द्वितीय उत्तरदाता (अवयस्क के पिता) को संरक्षक नियुक्त करने की प्रार्थना की गई थी – याचिकाकर्ता ने वैकल्पिक अनुतोष भी माँगा था कि यदि न्यायालय विनिर्दिष्ट पालन का अनुतोष प्रदान न करे, तो भुगतान की गई राशि ब्याज सहित वापस दिलाने की डिक्री प्रदान की जाए – तथापि, विचारण न्यायालय ने एकपक्षीय डिक्री पारित करते हुए यह घोषित किया कि याचिकाकर्ता विनिर्दिष्ट पालन के अनुतोष का अधिकारी है – निष्पादन कार्यवाही में भी उत्तरदाता एकपक्षीय घोषित किए गए तथा निष्पादन याचिका स्वीकृत कर ली गई – इसके पश्चात्, उत्तरदाताओं ने निष्पादन याचिका में पारित एकपक्षीय आदेश को निरस्त करने हेतु आवेदन दायर किया – इस बीच, याचिकाकर्ताओं को विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु रु. 1,98,000/- मूल्य के गैर-न्यायिक मुद्रांक पत्र जमा करने हेतु निर्देशित किया गया – उन्होंने ऐसा किया तथा विक्रय विलेख निष्पादित हो गया – इसके पश्चात् ही उत्तरदाताओं ने 862 दिनों की विलंब अवधि को क्षम्य

करने तथा एकपक्षीय डिक्री को निरस्त करने हेतु आवेदन दायर किया - उक्त आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा निरस्त कर दिया गया - इससे व्यथित होकर उत्तरदाताओं ने संहिता की धारा 115 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण याचिका दायर की - संरक्षक की नियुक्ति के संबंध में संदेह उत्पन्न होने पर, उच्च न्यायालय ने मूल अभिलेख तलब किए - यह पाते हुए कि वादपत्र के साथ दायर संरक्षक नियुक्ति संबंधी अंतरवर्ती आवेदन का समुचित निस्तारण नहीं किया गया था तथा आदेश 32, नियम 3 के अनुसार अवयस्क के लिए संरक्षक की नियुक्ति नहीं की गई थी, उच्च न्यायालय ने भारत के संविधान के कंडिका 227 के अधीन अपने सामान्य अधीक्षणाधिकार का प्रयोग करते हुए, विलंब के प्रश्न पर विचार किए बिना तथा विलंब क्षमा हेतु पर्याप्त कारण की परीक्षा किए बिना, स्वयं एकपक्षीय डिक्री को निरस्त कर दिया - यह सुनिश्चित करने के उद्देश्य से कि याचिकाकर्ता/डिक्रीधारक डिक्री के पश्चात् (या डिक्री के कारण) आर्थिक रूप से हानि की स्थिति में न पहुँचें, उच्च न्यायालय ने उत्तरदाताओं पर यह शर्त आरोपित की कि वे याचिकाकर्ताओं को व्यय के रूप में रु. 2,50,000/- का भुगतान करें, क्योंकि याचिकाकर्ता/डिक्रीधारक पहले ही मुद्रांक पत्र जमा कर विक्रय विलेख का निष्पादन करा चुके थे - उत्तरदाताओं ने रु. 2,50,000/- की व्यय राशि जमा कर दी - इसके परिणामस्वरूप, विचारण न्यायालय ने मुद्दे निर्धारित करने के पश्चात् वाद को विचारण हेतु पुनः ग्रहण किया - इससे व्यथित होकर याचिकाकर्ता ने वर्तमान विशेष अनुमति याचिका दायर की - अभिनिर्धारित : तथ्यों के संबंध में कोई विवाद नहीं है कि उत्तरदाता वाद तथा निष्पादन कार्यवाही दोनों का प्रतिरक्षण करने में अत्यधिक लापरवाह रहे - तथापि, उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय से अभिलेख तलब करने के पश्चात् यह पाया कि वस्तुतः विचारण न्यायालय विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार अवयस्क के लिए संरक्षक नियुक्त करने में विफल रहा - वास्तव में, याचिकाकर्ताओं द्वारा आदेश 32, नियम 3 के अंतर्गत एक आवेदन दायर किया गया था - उक्त आवेदन विचारण न्यायालय द्वारा बंद कर दिया गया - आदेश 32, नियम 3 के अंतर्गत दायर आवेदन का जिस प्रकार

विचारण न्यायालय ने निस्तारण किया, वह अनुचित है तथा किसी भी प्रकार से विधिसंगत नहीं ठहराया जा सकता - यह सत्य है कि उच्च न्यायालय केवल एक ऐसी पुनरीक्षण याचिका पर विचार कर रहा था, जो परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत दायर याचिका को निरस्त किए जाने के आदेश से उत्पन्न हुई थी - किन्तु इससे उच्च न्यायालय का यह क्षेत्राधिकार समाप्त या सीमित नहीं होता कि वह अभिलेखों का परीक्षण करे, विशेषतः किसी महत्वपूर्ण प्रक्रियात्मक नियम के संदर्भ में, खासकर तब जब वह किसी विधिक अक्षमता से ग्रस्त व्यक्ति से संबंधित हो - आदेश 32, नियम 3 में मद्रास संशोधन की कठोर प्रकृति संभवतः उस व्यापक क्षेत्राधिकार से संबंधित है, जिसका प्रयोग उच्च न्यायालय अपने मूल पक्ष में लेटर्स पेटेंट की कंडिका 17 के अंतर्गत करता रहा है, तथा राष्ट्र अभिभावक के रूप में, क्षेत्राधिकार से भी, जिसका प्रयोग न्यायालय सामान्यतः अवयस्कों से संबंधित मामलों में करता है - अतः, उच्च न्यायालय द्वारा वाद के मूल अभिलेख तलब कर यह परीक्षण करना कि अवयस्क प्रतिवादी के लिए आदेश 32, नियम 3 में विनिर्दिष्ट प्रक्रिया के अनुसार विधिवत संरक्षक नियुक्त किया गया था या नहीं, विधिविरुद्ध नहीं कहा जा सकता, भले ही याचिकाकर्ताओं द्वारा इस संबंध में कोई विशिष्ट तर्क प्रस्तुत न किया गया हो - यह तर्क कि परिसीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत दायर याचिका को निरस्त किए जाने से उत्पन्न पुनरीक्षण में उच्च न्यायालय संविधान के कंडिका 227 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए स्वयं एकपक्षीय डिक्री को निरस्त नहीं कर सकता, स्वीकार्य नहीं है - यह विधि का सुव्यवस्थित सिद्धांत है कि संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियाँ संहिता की धारा 115 के अंतर्गत उपलब्ध शक्तियों से अतिरिक्त एवं व्यापक हैं - उच्च न्यायालय ने कंडिका 227 का प्रयोग कर एकपक्षीय डिक्री को निरस्त करने में क्षेत्राधिकार संबंधी कोई त्रुटि नहीं की - वास्तव में, उच्च न्यायालय ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि क्या अवयस्क के विरुद्ध बिना विधिवत संरक्षक नियुक्त किए पारित डिक्री स्वतः शून्य होगी अथवा यह इस बात पर निर्भर करेगा कि अवयस्क के प्रति कोई प्रतिकूल

प्रभाव सिद्ध हुआ है या नहीं - उच्च न्यायालय ने यह भी पाया कि वर्तमान मामले में अवयस्क को प्रतिकूल प्रभाव पहुँचा था।

विशेष अनुमति याचिका को निरस्त करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित : 1. तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है और इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता कि उत्तरदाता वाद के साथ-साथ निष्पादन कार्यवाही का प्रतिरक्षण करने में अत्यंत लापरवाह रहे हैं। किन्तु तथ्य यह है कि जहाँ पक्षकार लापरवाह रह सकते हैं, वहीं न्यायालय ऐसा नहीं कर सकता। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय से अभिलेख तलब करने के पश्चात् यह पाया कि वस्तुतः विचारण न्यायालय विधि द्वारा निर्धारित रीति से तृतीय उत्तरदाता/अल्पवयस्क के लिए संरक्षक नियुक्त करने में विफल रहा। याचिकाकर्ता-यहाँ/वादकर्ता द्वारा संहिता के आदेश XXXII, नियम 3 के अंतर्गत अंतरवर्ती आवेदन संख्या 981/2013 वास्तव में दायर किया गया था। उक्त आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा 23.03.2014 को पारित आदेश द्वारा बंद कर दिया गया। आदेश XXXII, नियम 3 के अंतर्गत दायर आवेदन के निस्तारण की यह रीति निस्संदेह अनुचित है और विशेषतः मद्रास संशोधन के प्रकाश में, किसी भी प्रकार से स्थिर नहीं रह सकती। [कंडिका 14] [358-डी-जी]

2. आदेश XXXII, नियम 3, संहिता की प्रथम अनुसूची में निहित है। संहिता की धारा 121 के अधीन, प्रथम अनुसूची के नियम, जब तक कि भाग-X (जिसमें धारा 121 से 131 सम्मिलित हैं) के प्रावधानों के अनुसार निरस्त या परिवर्तित न किए जाएँ, संहिता के मुख्य भाग में अधिनियमित होने के समान प्रभाव रखते हैं। संहिता की धारा 122 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों को, अपने पर्यवेक्षणाधीन दीवानी न्यायालयों की प्रक्रिया के विनियमन के लिए, प्रथम अनुसूची के सभी या किसी नियम को निरस्त करने, परिवर्तित करने या उनमें जोड़ करने का अधिकार प्राप्त है। ऐसे अधिकार के प्रयोग में, मद्रास उच्च न्यायालय ने संहिता के आदेश XXXII के नियम 3 को, उसके मूल रूप से कहीं अधिक विस्तृत बनाया है। [कंडिका 15, 16][358-जी-एच; 359-ए-बी]

3. आक्षेपित आदेश में, विद्वान न्यायाधीश ने संहिता के आदेश XXXII, नियम 3 को उसके मूल रूप में उद्धृत किया है। किन्तु मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन दीवानी न्यायालयों पर उसके अनुप्रयोग में, आदेश XXXII के नियमों में पर्याप्त भिन्नता है। केन्द्रीय अधिनियम द्वारा आदेश XXXII के नियम 3 में निर्धारित प्रक्रिया तथा मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन दीवानी न्यायालयों पर लागू नियम 3 के बीच व्यापक अंतर है। दोनों प्रकार के नियमों की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन न्यायालयों पर लागू नियम अधिक विस्तृत तथा अधिक कठोर हैं। (i) मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन न्यायालयों पर लागू नियम 3 के उप-नियम (1) एवं (2) अतिरिक्त अपेक्षाएँ निर्धारित करते हैं; (ii) लागू नियमों के नियम 3 का उप-नियम (3), मूल संहिता के नियम 3 के उप-नियम (1) का पुनरुत्पादन है; (iii) लागू नियमों के नियम 3 का उप-नियम (3-ए), केन्द्रीय अधिनियम के उप-नियम (5) का पुनरुत्पादन है; (iv) लागू नियमों के नियम 3 का उप-नियम (7), केन्द्रीय अधिनियम के नियम 3 के उप-नियम (4) का परिष्कृत रूप है। [कंडिका 17, 18, 19][359-बी-सी; 362-जी-एच; 363-जी-एच; 364-ए-बी]

4. इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि लागू नियमों के अंतर्गत आदेश XXXII के नियम 3 के उप-नियम (4), (5), (6) तथा उप-नियम (7) के एक भाग में कुछ अतिरिक्त अपेक्षाएँ निर्धारित की गई हैं, जो इस प्रकार हैं :- (i) जब संरक्षक की नियुक्ति हेतु आवेदन वादकर्ता द्वारा किया जाता है, तो उसमें उपयुक्तता के क्रम में ऐसे व्यक्तियों की सूची दी जानी चाहिए, जिनके पूर्ण पते उल्लिखित हों, ताकि अनुलग्नक एच में निहित प्रपत्र संख्या 11-ए के अनुसार सूचना की तामील की जा सके, और जो अल्पवयस्क प्रतिवादी के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए सक्षम एवं योग्य हों; (ii) संरक्षक नियुक्ति हेतु आवेदन, शपथ-पत्र द्वारा समर्थित होना चाहिए, जो केवल यह सत्यापित न करे (जैसा कि केन्द्रीय अधिनियम में है) कि प्रस्तावित संरक्षक का विवादित विषय-वस्तु में अल्पवयस्क के प्रतिकूल कोई हित नहीं है, बल्कि उसमें अतिरिक्त विवरण भी सम्मिलित हों, जिनमें वास्तविक संरक्षक का नाम एवं पता

तथा अन्य उपयुक्त व्यक्तियों के नाम एवं पते शामिल हों, जब प्राकृतिक अथवा वास्तविक संरक्षक को कार्य करने की अनुमति न दी गई हो। [कंडिका 20][364-बी-डी]

5. यह निर्विवाद है कि विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकरण में विचारण न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में संदेह उत्पन्न होने पर विचारण न्यायालय से अभिलेख तलब किए और तथ्यतः यह पाया कि विचारण न्यायालय आदेश XXXII, नियम 3 के अनुसार तृतीय प्रतिवादी के लिए संरक्षक नियुक्त करने में विफल रहा। संहिता की धारा 115(1) के अंतर्गत दायर पुनरीक्षण में अभिलेख तलब करने तथा उनका परीक्षण करने की न्यायाधीश की शक्ति पर याचिकाकर्ताओं द्वारा न तो कोई संदेह किया जा सकता है और न ही प्रश्न उठाया जा सकता है। यह सत्य है कि विद्वान न्यायाधीश केवल सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत दायर याचिका की अस्वीकृति से उत्पन्न पुनरीक्षण याचिका पर विचार कर रहे थे। किन्तु इससे उच्च न्यायालय के उस अधिकार का अपहरण या संकुचन नहीं होता कि वह अभिलेखों की जांच करे, विशेषतः प्रक्रिया के एक महत्वपूर्ण नियम के संदर्भ में, खासकर जब वह दिव्यांग व्यक्तियों से संबंधित हो। आदेश XXXII, नियम 3 में मद्रास संशोधन की कठोर प्रकृति का कारण संभवतः उच्च न्यायालय द्वारा अपने मूल पक्ष में पत्र पेटेंट की धारा-17 के अंतर्गत प्रयुक्त व्यापक क्षेत्राधिकार तथा अल्पवयस्कों के मामलों में न्यायालय द्वारा सामान्यतः प्रयोग किए जाने वाले *राष्ट्र अभिभावक के रूप में* अधिकार से संबंधित है। अतः, वाद के मूल अभिलेख तलब कर यह जांचने में कि क्या अल्पवयस्क प्रतिवादी के लिए आदेश XXXII, नियम 3 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विधिवत संरक्षक नियुक्त किया गया था या नहीं, उच्च न्यायालय की कार्रवाई में कोई अवैधता नहीं है, भले ही याचिकाकर्ताओं द्वारा इस संबंध में कोई विशिष्ट आपत्ति न उठाई गई हो। [कंडिका 21][364-डी-एच; 365-ए]

6. यह तर्क कि सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत दायर याचिका की अस्वीकृति से उत्पन्न पुनरीक्षण में, उच्च न्यायालय संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत अधिकार का प्रयोग कर स्वयं एकपक्षीय डिक्री को निरस्त नहीं कर सकता, स्वीकार्य नहीं है।

यह सुविदित है कि संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियाँ, संहिता की धारा 115 के अंतर्गत शक्तियों के अतिरिक्त तथा उनसे व्यापक हैं। उच्च न्यायालय ने कंडिका 227 का प्रयोग कर एकपक्षीय डिक्री निरस्त करते हुए किसी अधिकार-क्षेत्रीय त्रुटि का उपक्रम नहीं किया। वस्तुतः, विद्वान न्यायाधीश ने यह प्रश्न भी विचारित किया कि क्या उचित संरक्षक की नियुक्ति के बिना अल्पवयस्क के विरुद्ध पारित डिक्री स्वयंसिद्ध रूप से शून्य है अथवा यह अल्पवयस्क के प्रति हुई क्षति के स्थापित होने पर निर्भर करेगा। विद्वान न्यायाधीश ने यह पाया कि वर्तमान मामले में अल्पवयस्क को क्षति पहुँची है।
[कंडिका 22, 23][365-ए-बी, डी-ई]

सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राय एवं अन्य (2003) 6 एस सी सी 675

: [2003] 2 पूरक एस सी आर 290; *राधेश्याम एवं अन्य बनाम छबि नाथ एवं अन्य* (2015) 5 एस सी सी 423 : [2015] 3 एस सी आर 197 — संदर्भित।

लंका सन्यासी बनाम लंका येर्रेन नायडू 1929 लॉ वीकली 455; *दिव्य दीप सिंह एवं अन्य बनाम राम बचन मिश्र एवं अन्य* (1997) 1 एस सी सी 504 : [1996] 7 अनुलग्नक एस सी आर 705; *आनंदराम एवं अन्य बनाम माधोलाल एवं अन्य ए आई आर 1960 राजस्थान 189*; *रंगम्मल बनाम अल्पवयस्क अप्पासामी* 85 लॉ वीकली 574 — भिन्न ठहराए गए।
औसेफ जोसेफ बनाम थोमा ईथम्मा ए आई आर 1956 टी सी 26 — अनुप्रयोज्य ठहराया गया।

न्यायिक दृष्टांत संदर्भ

[2003] 2 अनुलग्नक एस सी आर 290	संदर्भित	कंडिका 22
[2015] 3 एस सी आर 197	संदर्भित	कंडिका 22
[1996] 7 अनुलग्नक एस सी आर 705	भिन्न ठहराया गया	कंडिका 31

दीवानी अपीलिय क्षेत्राधिकार : 2021 की विशेष अनुमति याचिका (दीवानी) संख्या 2492

मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा 2018 की सी आर पी एन पी डी संख्या 959 में पारित दिनांक 14.09.2020 के निर्णय एवं आदेश से।

एस. नागमुथु, वरिष्ठ अधिवक्ता, एम. पी. पार्थिवन, अधिवक्ता — याचिकाकर्ताओं के लिए।

एम. ए. चिन्नास्वामी, सी. रुबावती, एम. वीरारागवन, च. लीला सर्वेश्वर, वी. सैथिल कुमार, पी. राजाराम, अधिवक्ता — उत्तरदाताओं के लिए।

न्यायालय का निर्णय प्रस्तुत किया गया :

वी. रामासुब्रमणियन, न्यायाधीश।

1. दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (संक्षेप में “संहिता”) की धारा 115 के अंतर्गत दायर एक दीवानी पुनरीक्षण याचिका में, जिसमें विशिष्ट पालन संबंधी एकपक्षीय डिक्री को निरस्त कराने हेतु 862 दिनों की देरी की क्षमा से इंकार करने वाले विचारण न्यायालय के आदेश को चुनौती दी गई थी, उच्च न्यायालय ने यह पाया कि उक्त एकपक्षीय डिक्री शून्य है, क्योंकि वह डिक्री एक अल्पवयस्क के विरुद्ध पारित की गई थी, जबकि आदेश XXXII, नियम 3 के अंतर्गत संहिता द्वारा परिकल्पित प्रक्रिया के अनुसार उसके लिए विधिवत नियुक्त संरक्षक द्वारा उसका प्रतिनिधित्व नहीं किया गया था। अतः, उच्च न्यायालय ने संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत अपने पर्यवेक्षणाधिकार का प्रयोग करते हुए स्वयं एकपक्षीय डिक्री को इस शर्त पर निरस्त कर दिया कि उच्च न्यायालय के समक्ष उपस्थित याचिकाकर्ता/प्रतिवादी, डिक्रीधारकों द्वारा स्टाम्प पत्र आदि के क्रय में पूर्व में व्यय की गई राशि के प्रतिनिधित्व में ₹2,50,000/- की धनराशि का भुगतान करें। उच्च न्यायालय के उक्त आदेश से व्यथित होकर, डिक्रीधारक वर्तमान विशेष अनुमति याचिका के माध्यम से हमारे समक्ष उपस्थित हुए हैं।

2. हमने याचिकाकर्ता/वादकर्ताओं के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस. नागमुत्थु तथा उत्तरदाता/प्रतिवादियों के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. बालासुब्रमणियन को सुना है।

3. याचिकाकर्ताओं द्वारा दिनांक 25.04.2011 के विक्रय अनुबंध के विशिष्ट पालन के लिए दायर वाद ओ.एस. संख्या 264/2013 में, उत्तरदाताओं को विधिवत समन की तामील कराई गई थी, किन्तु अधिवक्ता के माध्यम से उपस्थिति दर्ज कराने के पश्चात् वे एकपक्षीय हो गए। विचारण न्यायालय ने दिनांक 08.04.2015 को वाद का एकपक्षीय डिक्री पारित किया।

4. इस स्तर पर एक तथ्य का उल्लेख प्रासंगिक है, अर्थात् याचिकाकर्ताओं ने वैकल्पिक अनुतोष के रूप में यह प्रार्थना की थी कि यदि न्यायालय विशिष्ट पालन की अनुतोष प्रदान न करे, तो अदा की गई धनराशि की वार्षिक 18% ब्याज सहित वापसी का डिक्री प्रदान किया जाए। किन्तु विचारण न्यायालय ने, यद्यपि बिना कोई कारण बताए, यह ठहराया कि याचिकाकर्ता मुख्य अनुतोष अर्थात् विशिष्ट पालन के लिए पात्र हैं।

5. याचिकाकर्ताओं द्वारा दायर वादपत्र में तृतीय प्रतिवादी का वर्णन इस प्रकार किया गया था— “अल्पवयस्क एस. अरविंदराजन, आयु लगभग 16 वर्ष, पिता संपतकुमार, जिनका प्रतिनिधित्व वाद मित्र पिता एम. संपतकुमार द्वारा किया गया है।” अतः याचिकाकर्ताओं ने वादपत्र के साथ-साथ संहिता के आदेश XXXII, नियम 3 के अंतर्गत 2013 की अंतरवर्ती आवेदन संख्या 981 दायर किया था, ताकि द्वितीय उत्तरदाता (अल्पवयस्क का पिता एवं द्वितीय प्रतिवादी) को अल्पवयस्क का संरक्षक नियुक्त किया जा सके। जैसा कि उच्च न्यायालय द्वारा अभिलक्षित किया गया, विचारण न्यायालय ने द्वितीय प्रतिवादी को सूचना की तामील कराने के पश्चात् दिनांक 23.03.2014 को 2013 की अंतरवर्ती आवेदन संख्या 981 में निम्नलिखित आदेश पारित किया—

“बाट्टा तामील। अल्पवयस्क के लिए संरक्षक द्वारा वकालतनामा दायर।

अतः यह याचिका बंद की जाती है।”

6. डिक्री के निष्पादन हेतु याचिकाकर्ताओं ने निष्पादन याचिका संख्या 33 / 2015 दायर की। निष्पादन याचिका में सभी उत्तरदाताओं को सूचना की तामील कराई गई तथा यह याचिका दिसंबर-2015 में दो तिथियों पर तथा वर्ष 2016 में कई तिथियों पर सुनवाई हेतु प्रस्तुत हुई। अंततः दिनांक 18.10.2016 को उत्तरदाताओं को निष्पादन याचिका में एकपक्षीय कर दिया गया और याचिका स्वीकार कर ली गई।

7. इसके पश्चात्, उत्तरदाताओं ने नवंबर-2016 में निष्पादन याचिका में पारित एकपक्षीय आदेश को निरस्त कराने हेतु एक आवेदन प्रस्तुत किया। उक्त आवेदन को वर्ष 2017 में ही क्रमांकित किया गया और उसे निष्पादन आवेदन संख्या 40 / 2017 के रूप में पंजीकृत किया गया।

8. इसी बीच, याचिकाकर्ताओं को विक्रय विलेख के निष्पादन हेतु ₹1,98,000/- मूल्य के गैर-न्यायिक स्टाम्प पत्र जमा करने का निर्देश दिया गया। उन्होंने ऐसा किया और दिनांक 04.01.2017 को न्यायालय द्वारा वास्तव में विक्रय विलेख निष्पादित किया गया।

9. इसके पश्चात् ही उत्तरदाताओं ने एकपक्षीय डिक्री को निरस्त कराने हेतु 862 दिनों की देरी की क्षमा के लिए 2017 की अंतरवर्ती आवेदन संख्या 142 प्रस्तुत किया। दिनांक 19.09.2017 को दायर इस आवेदन को विचारण न्यायालय ने दिनांक 28.11.2017 के आदेश द्वारा मुख्यतः तीन आधारों पर अस्वीकृत कर दिया, अर्थात्— (i) देरी के लिए कोई समुचित स्पष्टीकरण प्रस्तुत नहीं किया गया; (ii) आदेश VIII, नियम 7 में निर्धारित अवधि के भीतर लिखित कथन भी प्रस्तुत नहीं किया गया; तथा (iii) निष्पादन कार्यवाही को भी एकपक्षीय रूप से आगे बढ़ने देने और निष्पादन न्यायालय द्वारा विक्रय विलेख निष्पादित हो जाने के पश्चात्, उत्तरदाता इतनी अधिक देरी की क्षमा नहीं मांग सकते।

10. एकपक्षीय डिक्री को निरस्त कराने हेतु देरी की क्षमा संबंधी याचिका की अस्वीकृति से व्यथित होकर, उत्तरदाताओं ने संहिता की धारा 115 के अंतर्गत उच्च न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण याचिका दायर की। तृतीय प्रतिवादी के लिए संरक्षक की नियुक्ति के संबंध में संदेह उत्पन्न होने पर, विद्वान न्यायाधीश ने विचारण न्यायालय से वाद के मूल अभिलेख तलब किए। यह पाते हुए कि तृतीय प्रतिवादी के लिए संरक्षक नियुक्त किए जाने हेतु वादपत्र के साथ दायर 2013 की अंतरवर्ती आवेदन संख्या 981 का विधिवत निस्तारण नहीं किया गया था तथा आदेश XXXII, नियम 3 के अनुसार अल्पवयस्क के लिए कोई संरक्षक नियुक्त नहीं किया गया था, विद्वान न्यायाधीश ने संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत सामान्य पर्यवेक्षणाधिकार का प्रयोग करते हुए, देरी के प्रश्न में गए बिना और यह जांच किए बिना कि देरी की क्षमा के लिए पर्याप्त कारण था या नहीं, स्वयं एकपक्षीय डिक्री को निरस्त कर दिया। यह सुनिश्चित करने के लिए कि याचिकाकर्ता/डिक्रीधारक डिक्री के पश्चात् (या डिक्री के कारण) निर्धन न हो जाएं, विद्वान न्यायाधीश ने उत्तरदाताओं पर यह शर्त लगाई कि वे दिनांक 16.10.2020 को या उससे पूर्व याचिकाकर्ता-यहाँ को लागत के रूप में ₹2,50,000/- का भुगतान करें, क्योंकि याचिकाकर्ता/डिक्रीधारक पहले ही ₹1,98,000/- मूल्य के स्टाम्प पत्र जमा कर चुके थे और विक्रय विलेख निष्पादित करा चुके थे।

11. प्रतीत होता है कि उच्च न्यायालय के उपर्युक्त आदेश के अनुपालन में, उत्तरदाताओं ने दिनांक 12.10.2020 को ₹2,50,000/- की लागत जमा कर दी। इसके परिणामस्वरूप, विचारण न्यायालय ने मुद्दे निर्धारित करने के पश्चात् वाद की सुनवाई प्रारम्भ कर दी है। उत्तरदाताओं के लिए उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. बालासुब्रमणियन द्वारा यह कहा गया है कि वर्तमान में वाद, अभियोजन साक्षी 1 के परीक्षण हेतु सूचीबद्ध है।

12. उच्च न्यायालय के आक्षेपित आदेश पर याचिकाकर्ताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री एस. नागमूर्ति द्वारा प्रतिपादित मुख्य आपत्तियाँ इस प्रकार हैं :- (i) यह कि सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत दायर याचिका से उत्पन्न पुनरीक्षण

में उच्च न्यायालय को एकपक्षीय डिक्री को निरस्त नहीं करना चाहिए था; (ii) यह कि वाद का प्रतिरक्षण करने में, तत्पश्चात् निष्पादन कार्यवाही का प्रतिरक्षण करने में तथा निष्पादन याचिका में पारित एकपक्षीय आदेश को निरस्त कराने के लगभग एक वर्ष पश्चात् एकपक्षीय डिक्री को निरस्त कराने का प्रयास करने में अत्यंत लापरवाह रहे उत्तरदाताओं के पक्ष में न्यायालय को समता का सिद्धांत भी लागू करने का अधिकार नहीं था; तथा (iii) यह कि न तो उच्च न्यायालय के समक्ष उत्तरदाताओं द्वारा दायर पुनरीक्षण याचिका में यह कोई आधार उठाया गया था और न ही कोई तर्क प्रस्तुत किया गया था कि संहिता के आदेश XXXII, नियम 3 में निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया गया अथवा विचारण न्यायालय की किसी कथित चूक के कारण प्रतिवादी/अल्पवयस्क को कोई गंभीर क्षति या अन्याय हुआ है।

13. इसके प्रत्युत्तर में, उत्तरदाताओं की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री आर. बालासुब्रमणियन ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय का पुनरीक्षणात्मक अधिकार व्यापक प्रकृति का है और जब उच्च न्यायालय यह पाता है कि विचारण न्यायालय ने विधि द्वारा निर्धारित प्रक्रिया का पालन करते हुए कार्यवाही में पक्षकार रहे अल्पवयस्क के हितों की रक्षा नहीं की है, तो उच्च न्यायालय तकनीकी आधारों पर अपनी आँखें मूँद नहीं सकता।

14. हमने दोनों पक्षों के प्रतिद्वंद्वी तर्कों पर सावधानीपूर्वक विचार किया है। तथ्यों पर कोई विवाद नहीं है और इस निष्कर्ष से बचा नहीं जा सकता कि उत्तरदाता वाद तथा निष्पादन कार्यवाही दोनों का प्रतिरक्षण करने में अत्यंत लापरवाह रहे हैं। किन्तु तथ्य यह है कि जहाँ पक्षकार लापरवाह रह सकते हैं, वहीं न्यायालय ऐसा नहीं कर सकता। उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय से अभिलेख तलब करने के पश्चात् यह पाया कि वस्तुतः विचारण न्यायालय विधि द्वारा निर्धारित रीति से तृतीय उत्तरदाता/अल्पवयस्क के लिए संरक्षक नियुक्त करने में विफल रहा। जैसा कि पूर्व में इंगित किया गया है, याचिकाकर्ता-यहाँ/वादकर्ताओं द्वारा संहिता के आदेश XXXII, नियम 3 के अंतर्गत 2013 की अंतरवर्ती

आवेदन संख्या 981 वास्तव में दायर किया गया था। उक्त आवेदन को विचारण न्यायालय द्वारा दिनांक 23.03.2014 को पारित आदेश द्वारा बंद कर दिया गया, जिसे हमने अन्यत्र उद्धृत किया है। आदेश XXXII, नियम 3 के अंतर्गत दायर आवेदन के निस्तारण की यह रीति निस्संदेह अनुचित है और विशेषतः मद्रास संशोधन के परिप्रेक्ष्य में किसी भी प्रकार से स्थिर नहीं रह सकती।

15. आदेश XXXII, नियम 3, संहिता की प्रथम अनुसूची में निहित है। संहिता की धारा 121 के अधीन, प्रथम अनुसूची में निहित नियम, जब तक कि भाग-X (जिसमें धारा 121 से 131 सम्मिलित हैं) के प्रावधानों के अनुसार निरस्त या परिवर्तित न कर दिए जाएँ, संहिता के मुख्य भाग में अधिनियमित होने के समान प्रभाव रखते हैं। संहिता की धारा 122 के अंतर्गत उच्च न्यायालयों को, अपने पर्यवेक्षणाधीन दीवानी न्यायालयों की प्रक्रिया के विनियमन के लिए, प्रथम अनुसूची के सभी या किसी नियम को निरस्त करने, परिवर्तित करने अथवा उनमें जोड़ करने का अधिकार प्राप्त है।

16. ऐसे अधिकार के प्रयोग में, मद्रास उच्च न्यायालय ने संहिता के आदेश XXXII के नियम 3 को, उसके मूल स्वरूप की तुलना में कहीं अधिक विस्तृत बनाया है।

17. आक्षेपित आदेश में, विद्वान न्यायाधीश ने संहिता के आदेश XXXII, नियम 3 को उसके मूल रूप में उद्धृत किया है। किन्तु मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन दीवानी न्यायालयों पर उसके अनुप्रयोग में, आदेश XXXII, नियम 3¹ वस्तुतः निम्नलिखित रूप में है :-

“3. वाद मित्र या संरक्षक बनने की अर्हताएँ —

1 संशोधन वर्ष 1938 की पी. डिस. संख्या 256 की अधिसूचना द्वारा, सेंट जॉर्ज राजपत्र दिनांक 13-3-1938 के माध्यम से किया गया था। दुर्भाग्यवश, हाल के समय में प्रकाशित अधिकांश मूल अधिनियमों में, तथा यहाँ तक कि दीवानी प्रक्रिया संहिता पर मुल्ला के 19 वें संस्करण में भी, मद्रास संशोधन के संबंध में अधिसूचना संख्या एवं दिनांक का कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

(1) कोई भी व्यक्ति जो स्वस्थ मस्तिष्क का हो और जिसने वयस्कता प्राप्त कर ली हो, किसी अल्पवयस्क के लिए वाद में वाद मित्र के रूप में अथवा उसके संरक्षक के रूप में कार्य कर सकता है :

परन्तु यह कि उस व्यक्ति का हित अल्पवयस्क के हित के प्रतिकूल न हो तथा यह भी कि वाद मित्र की स्थिति में वह प्रतिवादी न हो और वाद के लिए संरक्षक की स्थिति में वह वादी न हो।

(2) नियुक्त या घोषित संरक्षकों को प्राथमिकता तथा केवल अभिलेखबद्ध कारणों से ही अपसारण — जहाँ किसी अल्पवयस्क के लिए सक्षम प्राधिकारी द्वारा कोई संरक्षक नियुक्त या घोषित किया गया हो, वहाँ उस संरक्षक के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति अल्पवयस्क के वाद मित्र के रूप में कार्य नहीं करेगा और न ही वाद के लिए उसका संरक्षक नियुक्त किया जाएगा, जब तक कि न्यायालय अभिलेख पर अंकित किए जाने वाले कारणों से यह न माने कि अल्पवयस्क के कल्याण के लिए किसी अन्य व्यक्ति को, यथास्थिति, कार्य करने अथवा नियुक्त किए जाने की अनुमति दी जानी चाहिए।

(3) न्यायालय द्वारा संरक्षक की नियुक्ति — जहाँ प्रतिवादी अल्पवयस्क हो, वहाँ न्यायालय, उसकी अल्पवयस्कता के तथ्य से संतुष्ट होकर, अल्पवयस्क के लिए वाद हेतु किसी उपयुक्त व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त करेगा।

(3-ए) उप-नियम (3) के अंतर्गत वाद के लिए अल्पवयस्क का संरक्षक नियुक्त व्यक्ति, जब तक कि उसका नियुक्ति-कार्य त्याग, पदच्युति अथवा मृत्यु द्वारा समाप्त न हो जाए, वाद से उत्पन्न सभी कार्यवाहियों में, जिनमें किसी अपीलीय अथवा पुनरीक्षण न्यायालय की कार्यवाहियाँ तथा डिक्री के निष्पादन की कोई भी कार्यवाही सम्मिलित है, निरंतर संरक्षक बना रहेगा।

(4) आवेदन पर नियुक्ति तथा जहाँ आवश्यक हो वहाँ प्रस्तावित संरक्षक को सूचना के पश्चात् — वाद के लिए संरक्षक की नियुक्ति का आदेश, अल्पवयस्क के नाम से और उसकी ओर से अथवा वादी द्वारा किए गए आवेदन पर प्राप्त किया जा सकता है। जहाँ आवेदन वादी द्वारा किया गया हो, वहाँ उसमें उपयुक्तता के क्रम में ऐसे व्यक्तियों की सूची दी जाएगी (जिनके पूर्ण पते अनुलग्नक एच में उल्लिखित प्रपत्र संख्या 11-ए के अनुसार सूचना की तामील हेतु दिए जाएँ) जो अल्पवयस्क प्रतिवादी के लिए वाद का संरक्षक बनने के लिए सक्षम एवं योग्य हों। न्यायालय किसी विशेष मामले में अभिलेख पर अंकित किए जाने वाले कारणों से, आवेदक को उपर्युक्त सूची प्रस्तुत करने से मुक्त कर सकता है।

(5) संरक्षक नियुक्ति हेतु आवेदन के समर्थन में शपथ-पत्र की विषय-वस्तु — उपर्युक्त उप-नियम में उल्लिखित आवेदन, चाहे वह वादी द्वारा किया गया हो अथवा अल्पवयस्क प्रतिवादी की ओर से, एक शपथ-पत्र द्वारा समर्थित होगा, जिसमें यह सत्यापित किया जाएगा कि प्रस्तावित संरक्षक का, अथवा प्रस्तावित किसी भी संरक्षक का, वाद में विवादित विषय-वस्तु के संबंध में अल्पवयस्क के प्रतिकूल कोई हित नहीं है तथा यह कि प्रस्तावित संरक्षक अथवा संरक्षकगण ऐसे नियुक्त किए जाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति हैं। शपथ-पत्र में प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार यह भी उल्लेख किया जाएगा— (ए) सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियुक्त या घोषित किसी विद्यमान संरक्षक का विवरण; (बी) यदि कोई हो, तो अल्पवयस्क के वास्तविक संरक्षक का नाम और पता; (सी) यदि कोई हों, तो ऐसे व्यक्तियों के नाम और पते, जो प्राकृतिक या वास्तविक संरक्षक अथवा सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियुक्त या घोषित संरक्षक को कार्य करने की अनुमति न दिए जाने की स्थिति में, संबंध, हित अथवा अन्य कारणों से, वाद के लिए अल्पवयस्क के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए उपयुक्त व्यक्ति हों।

(6) अल्पवयस्क के वाद के लिए संरक्षक नियुक्ति हेतु आवेदन, मृत पक्षकार के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने के आवेदन से पृथक होगा — अल्पवयस्क के वाद के लिए संरक्षक की नियुक्ति हेतु किया गया आवेदन, किसी मृत वादी या प्रतिवादी के विधिक प्रतिनिधियों को अभिलेख पर लाने हेतु किए गए आवेदन के साथ संयुक्त नहीं किया जाएगा। ऐसे आवेदन पृथक-पृथक याचिकाओं द्वारा किए जाएँगे।

(7) प्रस्तावित संरक्षक के अतिरिक्त अल्पवयस्क प्रतिवादी में हित रखने वाले व्यक्तियों को आवेदन की सूचना — उप-नियम (4) के अंतर्गत किसी आवेदन पर कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियुक्त या घोषित अल्पवयस्क के किसी संरक्षक को सूचना न दे दी जाए, अथवा जहाँ कोई संरक्षक न हो, वहाँ अल्पवयस्क के पिता या अन्य प्राकृतिक संरक्षक को, और जहाँ पिता या अन्य प्राकृतिक संरक्षक न हो, वहाँ उस व्यक्ति को, जिसकी देखरेख में अल्पवयस्क है, सूचना न दे दी जाए; तथा इस उप-नियम के अंतर्गत सूचना प्राप्त किसी भी व्यक्ति की ओर से प्रस्तुत आपत्ति, यदि कोई हो, को सुनने के पश्चात् ही आदेश पारित किया जाएगा। इस उप-नियम के अंतर्गत अपेक्षित सूचना, आवेदन की सुनवाई हेतु सूचना में निर्दिष्ट दिन से कम से कम छह स्पष्ट दिवस पूर्व तामील की जाएगी और वह अनुलग्नक एच में उल्लिखित प्रपत्र संख्या 11 के अनुसार हो सकती है।

(8) संरक्षक की नियुक्ति में विलंब को कम करने हेतु विशेष उपबंध — जहाँ आवेदन वादी द्वारा किया गया हो, वहाँ वह उप-नियम (4) और (5) में उल्लिखित अपने आवेदन तथा शपथ-पत्र के साथ-साथ आवश्यक प्रपत्रों की दो प्रतियाँ भी प्रस्तुत करेगा, जिन्हें उस चरण पर संभव सीमा तक पूर्ण रूप से भरा गया हो, ताकि उप-नियम (4) में उल्लिखित सूची में से न्यायालय द्वारा चयनित कम से कम दो

प्रस्तावित संरक्षकों को एक साथ सूचना जारी की जा सके; साथ ही, सेवा के लिए निर्धारित शुल्क के भुगतान को दर्शाने वाला विधिवत मुद्रांकित वाउचर भी प्रस्तुत किया जाएगा।

यदि प्रस्तावित संरक्षकों में से एक या अधिक व्यक्ति कार्य करने की सहमति प्रकट करते हैं, तो न्यायालय उनमें से किसी एक को नियुक्त करेगा और ऐसी नियुक्ति की सूचना नियुक्त व्यक्ति को पंजीकृत डाक द्वारा देगा। यदि सूचना प्राप्त किसी भी व्यक्ति द्वारा कार्य करने की सहमति प्रकट न की जाए, तो न्यायालय उप-नियम (4) में उल्लिखित सूची में नामित अन्य दो व्यक्तियों (यदि इतने हों) को एक साथ सूचना तामील कराने की कार्यवाही करेगा; किंतु उप-नियम (4) के अंतर्गत नया आवेदन आवश्यक नहीं माना जाएगा। प्रथम समूह के प्रस्तावित संरक्षकों द्वारा अनिच्छा की सूचना प्राप्त होने के तीन दिवस के भीतर आवेदक सेवा के लिए निर्धारित शुल्क का भुगतान करेगा और आवश्यक प्रपत्र विधिवत भरे हुए प्रस्तुत करेगा।

(9) किसी व्यक्ति की सहमति के बिना उसे संरक्षक नियुक्त नहीं किया जाएगा — किसी व्यक्ति की सहमति के बिना उसे वाद के लिए संरक्षक नियुक्त नहीं किया जाएगा। जब भी किसी आवेदन में किसी व्यक्ति का नाम वाद के लिए संरक्षक के रूप में प्रस्तावित किया जाए, तो अनुलग्नक एच में उल्लिखित प्रपत्र संख्या 11-ए के अनुसार सूचना प्रस्तावित संरक्षक को तामील की जाएगी, जब तक कि आवेदक स्वयं प्रस्तावित संरक्षक न हो अथवा प्रस्तावित संरक्षक अपनी सहमति न दे दे।

(10) न्यायालयीय संरक्षक — कब नियुक्त किया जाएगा — निधियों की व्यवस्था कैसे की जाएगी — जहाँ न्यायालय यह पाता है कि कोई भी व्यक्ति वाद के लिए संरक्षक के रूप में कार्य करने हेतु उपयुक्त और इच्छुक नहीं है, वहाँ न्यायालय अपने किसी अधिकारी या न्यायालय के किसी अधिवक्ता को संरक्षक नियुक्त कर सकता है और यह निर्देश दे सकता है कि संरक्षक के रूप में कर्तव्यों के निर्वहन में

उस अधिकारी द्वारा वहन की जाने वाली लागत, पक्षकारों द्वारा या किसी एक अथवा अधिक पक्षकारों द्वारा अथवा किसी ऐसी न्यायालयीन निधि से वहन की जाए, जिसमें अल्पवयस्क का हित निहित हो; तथा न्यायालय न्याय और मामले की परिस्थितियों के अनुसार लागत की प्रतिपूर्ति या भत्ते के संबंध में आवश्यक निर्देश भी दे सकता है।

(11) न्यायालयीय संरक्षक के अतिरिक्त अन्य संरक्षक के प्रतिरक्षण हेतु निधियाँ — जब अल्पवयस्क प्रतिवादी के वाद के लिए कोई संरक्षक नियुक्त किया जाता है और न्यायालय के समक्ष यह प्रकट होता है कि उस संरक्षक के पास प्रतिवादी की ओर से वाद के संचालन हेतु कोई निधि नहीं है अथवा पर्याप्त निधि नहीं है, और इसके कारण प्रतिवादी के प्रतिरक्षण को क्षति पहुँचने की संभावना है, तो न्यायालय समय-समय पर वादी को निर्देश दे सकता है कि वह संरक्षक को उसके प्रतिरक्षण के प्रयोजन हेतु धनराशि अग्रिम रूप से प्रदान करे; और इस प्रकार अग्रिम रूप से दी गई समस्त धनराशि वाद में वादी की लागत का भाग मानी जाएगी। आदेश में यह भी निर्देश दिया जाएगा कि संरक्षक, जैसा और जब निर्देशित किया जाए, प्राप्त धनराशि का लेखा न्यायालय में प्रस्तुत करेगा।”

18. केन्द्रीय अधिनियम द्वारा आदेश XXXII के नियम 3 में निर्धारित प्रक्रिया तथा मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन दीवानी न्यायालयों पर लागू नियम 3 के बीच व्यापक अंतर है। आदेश XXXII, नियम 3 अपने मूल रूप में निम्नलिखित प्रकार से है :-

“3. अल्पवयस्क प्रतिवादी के लिए वाद हेतु संरक्षक की नियुक्ति न्यायालय द्वारा —(1)

जहाँ प्रतिवादी अल्पवयस्क हो, वहाँ न्यायालय उसकी अल्पवयस्कता के तथ्य से संतुष्ट होकर, ऐसे अल्पवयस्क के लिए वाद हेतु किसी उपयुक्त व्यक्ति को संरक्षक नियुक्त करेगा।

(2) वाद हेतु संरक्षक की नियुक्ति का आदेश, अल्पवयस्क के नाम से और उसकी ओर से अथवा वादी द्वारा किए गए आवेदन पर प्राप्त किया जा सकता है।

(3) ऐसा आवेदन एक शपथ-पत्र द्वारा समर्थित होगा, जिसमें यह सत्यापित किया जाएगा कि प्रस्तावित संरक्षक का वाद में विवादित विषय-वस्तु के संबंध में अल्पवयस्क के प्रतिकूल कोई हित नहीं है तथा यह कि वह ऐसे नियुक्त किए जाने के लिए उपयुक्त व्यक्ति है।

(4) इस नियम के अंतर्गत किसी आवेदन पर कोई आदेश तब तक पारित नहीं किया जाएगा, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा नियुक्त या घोषित अल्पवयस्क के किसी संरक्षक को सूचना न दे दी जाए, अथवा जहाँ ऐसा कोई संरक्षक न हो, वहाँ अल्पवयस्क के पिता को, अथवा जहाँ पिता न हो, वहाँ माता को, अथवा जहाँ पिता या माता दोनों न हों, वहाँ अल्पवयस्क के अन्य प्राकृतिक संरक्षक को, अथवा जहाँ पिता, माता अथवा अन्य कोई प्राकृतिक संरक्षक न हो, वहाँ उस व्यक्ति को, जिसकी देखरेख में अल्पवयस्क है, सूचना न दे दी जाए; तथा इस उप-नियम के अंतर्गत सूचना प्राप्त किसी भी व्यक्ति की ओर से प्रस्तुत की गई आपत्ति, यदि कोई हो, को सुनने के पश्चात् ही आदेश पारित किया जाएगा।

(4-ए) न्यायालय, यदि वह उचित समझे, तो किसी भी मामले में उप-नियम (4) के अंतर्गत अल्पवयस्क को भी सूचना जारी कर सकता है।

(5) उप-नियम (1) के अंतर्गत वाद हेतु अल्पवयस्क का संरक्षक नियुक्त व्यक्ति, जब तक कि उसकी नियुक्ति त्याग, पदच्युति अथवा मृत्यु द्वारा समाप्त न हो जाए, वाद से उत्पन्न सभी कार्यवाहियों में, जिनमें किसी अपीलीय अथवा पुनरीक्षण न्यायालय की कार्यवाहियाँ तथा डिफ्री के निष्पादन की कोई भी कार्यवाही सम्मिलित है, निरंतर उसी रूप में बना रहेगा।”

19. दोनों प्रकार के नियमों की तुलना से यह स्पष्ट होता है कि मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन न्यायालयों पर लागू नियम अधिक विस्तृत तथा अधिक कठोर हैं। हम तुरंत यह इंगित कर सकते हैं— (i) कि मद्रास उच्च न्यायालय के पर्यवेक्षणाधीन न्यायालयों

पर लागू नियम 3 के उप-नियम (1) तथा (2) (आगे सुविधा के लिए “लागू नियम” कहे गए) अतिरिक्त अपेक्षाएँ हैं; (ii) कि लागू नियमों के नियम 3 का उप-नियम (3), मूल संहिता के नियम 3 के उप-नियम (1) का पुनरुत्पादन है; (iii) कि लागू नियमों के नियम 3 का उप-नियम (3-ए), केन्द्रीय अधिनियम के उप-नियम (5) का पुनरुत्पादन है; तथा (iv) कि लागू नियमों के नियम 3 का उप-नियम (7), केन्द्रीय अधिनियम के नियम 3 के उप-नियम (4) का परिष्कृत रूप है।

20. इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह है कि लागू नियमों के अंतर्गत आदेश XXXII के नियम 3 के उप-नियम (4), (5), (6) तथा उप-नियम (7) का एक भाग कुछ अतिरिक्त अपेक्षाएँ निर्धारित करते हैं, जो इस प्रकार हैं— (ए) जब संरक्षक की नियुक्ति हेतु आवेदन वादी द्वारा किया जाता है, तो उसमें उपयुक्तता के क्रम में ऐसे व्यक्तियों की सूची दी जानी चाहिए, जिनके पूर्ण पते अनुलग्नक एच में उल्लिखित प्रपत्र संख्या 11-ए के अनुसार सूचना की तामील हेतु दिए जाएँ, और जो अल्पवयस्क प्रतिवादी के संरक्षक के रूप में कार्य करने के लिए सक्षम एवं योग्य हों; (बी) संरक्षक नियुक्ति हेतु आवेदन शपथ-पत्र द्वारा समर्थित होना चाहिए, जो केवल यह सत्यापित न करे (जैसा कि केन्द्रीय अधिनियम में है) कि प्रस्तावित संरक्षक का विवादित विषय-वस्तु में अल्पवयस्क के प्रतिकूल कोई हित नहीं है, बल्कि उसमें अतिरिक्त विवरण भी सम्मिलित हों, जिनमें वास्तविक संरक्षक का नाम एवं पता तथा अन्य उपयुक्त व्यक्तियों के नाम एवं पते भी शामिल हों, जब प्राकृतिक अथवा वास्तविक संरक्षक को कार्य करने की अनुमति न दी गई हो।

21. यह निर्विवाद है कि विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रकरण में विचारण न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के संबंध में संदेह उत्पन्न होने पर विचारण न्यायालय से अभिलेख तलब किए और तथ्यतः यह पाया कि विचारण न्यायालय आदेश XXXII, नियम 3 के अनुसार तृतीय प्रतिवादी के लिए संरक्षक नियुक्त करने में विफल रहा। संहिता की धारा 115(1) के अंतर्गत दायर पुनरीक्षण में अभिलेख तलब करने तथा उनका परीक्षण करने की विद्वान

न्यायाधीश की शक्ति पर याचिकाकर्ताओं द्वारा न तो कोई संदेह किया जा सकता है और न ही प्रश्न उठाया जा सकता है। यह सत्य है कि विद्वान न्यायाधीश केवल सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत दायर याचिका की अस्वीकृति से उत्पन्न पुनरीक्षण याचिका पर विचार कर रहे थे। किन्तु इससे उच्च न्यायालय के उस अधिकार का अपहरण या संकुचन नहीं होता कि वह अभिलेखों की जांच करे, विशेषतः प्रक्रिया के एक महत्वपूर्ण नियम के संदर्भ में, खासकर जब वह दिव्यांग व्यक्तियों से संबंधित हो। आदेश XXXII, नियम 3 में मद्रास संशोधन की कठोर प्रकृति का कारण संभवतः उच्च न्यायालय द्वारा अपने मूल पक्ष में पत्र पेटेंट की धारा-17 के अंतर्गत प्रयुक्त व्यापक क्षेत्राधिकार तथा अल्पवयस्कों के मामलों में न्यायालय द्वारा सामान्यतः प्रयोग किए जाने वाले अभिभावकत्वाधिकार से संबंधित है। अतः, हम यह पाते हैं कि वाद के मूल अभिलेख तलब कर यह जांचने में कि क्या अल्पवयस्क प्रतिवादी के लिए आदेश XXXII, नियम 3 में निर्धारित प्रक्रिया के अनुसार विधिवत संरक्षक नियुक्त किया गया था या नहीं, उच्च न्यायालय की कार्रवाई में कोई अवैधता नहीं है, भले ही याचिकाकर्ताओं द्वारा इस संबंध में कोई विशिष्ट आपत्ति न उठाई गई हो।

22. यह तर्क कि सीमा अधिनियम, 1963 की धारा 5 के अंतर्गत दायर याचिका की अस्वीकृति से उत्पन्न पुनरीक्षण में, उच्च न्यायालय संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत अधिकार का प्रयोग कर स्वयं एकपक्षीय डिक्री को निरस्त नहीं कर सकता, हमें स्वीकार्य नहीं प्रतीत होता। यह सुविदित है कि संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत उच्च न्यायालय की शक्तियाँ, संहिता की धारा 115 के अंतर्गत शक्तियों के अतिरिक्त तथा उनसे व्यापक हैं। **सूर्य देव राय बनाम राम चंदर राय एवं अन्य** में, इस न्यायालय ने यहाँ तक माना था कि अधीनस्थ न्यायालय के गंभीर अधिकार-क्षेत्रीय दोषों के सुधार हेतु संविधान के कंडिका 226 के अंतर्गत *सर्टियोरारी* भी जारी की जा सकती है। तथापि, जहाँ तक उक्त दृष्टिकोण का संबंध संविधान के कंडिका 226 से था, उसकी शुद्धता पर एक अन्य पीठ ने संदेह व्यक्त किया,

जिसके परिणामस्वरूप तीन सदस्यीय पीठ के समक्ष संदर्भ किया गया। *राधेश्याम एवं अन्य बनाम छबि नाथ एवं अन्य*³ में, तीन सदस्यीय पीठ ने, कंडिका 226 के अंतर्गत अधिकार-क्षेत्र के प्रश्न पर *सूर्य देव राय* (उपर्युक्त) को प्रत्यावर्तित करते हुए भी, यह स्पष्ट किया कि संविधान के कंडिका 227 के अंतर्गत अधिकार-क्षेत्र भिन्न एवं पृथक है। अतः, हम इस तर्क से सहमत नहीं हैं कि उच्च न्यायालय ने कंडिका 227 का प्रयोग कर एकपक्षीय डिक्री को निरस्त करते हुए किसी अधिकार-क्षेत्रीय त्रुटि का उपक्रम किया।

23. वास्तव में, विद्वान न्यायाधीश ने इस प्रश्न पर भी विचार किया कि क्या उचित संरक्षक की नियुक्ति के बिना अल्पवयस्क के विरुद्ध पारित डिक्री स्वयंसिद्ध रूप से शून्य है अथवा यह अल्पवयस्क के प्रति हुई क्षति के स्थापित होने पर निर्भर करेगी। विद्वान न्यायाधीश ने यह पाया कि वर्तमान मामले में अल्पवयस्क को क्षति पहुँची है।

24. यह उल्लेखनीय है कि आदेश XXXII में नियम 3-ए को दीवानी प्रक्रिया संहिता (संशोधन) अधिनियम, 1976 (1976 की अधिनियम संख्या 104) द्वारा अंतःस्थापित किया गया था। इसी नियम द्वारा प्रथम बार संहिता में अल्पवयस्क को हुई क्षति के प्रश्न को सम्मिलित किया गया। किन्तु यह नियम 3-ए केवल उन मामलों पर लागू होता है जहाँ अल्पवयस्क के वाद के वाद मित्र अथवा संरक्षक का वाद के विषय-वस्तु में अल्पवयस्क के प्रतिकूल हित हो। यह संशोधन उस प्रश्न पर विद्यमान कुछ परस्पर विरोधी मतों के परिणामस्वरूप किया गया था कि क्या उन मामलों में, जहाँ अल्पवयस्क का प्रतिनिधित्व ऐसे संरक्षक द्वारा किया गया हो जिसका वाद के विषय-वस्तु में अल्पवयस्क के प्रतिकूल हित हो, पारित डिक्री शून्य होगी अथवा निरसनयोग्य।

25. अन्य शब्दों में, संसद ने आदेश XXXII, नियम 3-ए के अंतर्गत मामलों की केवल एक विशिष्ट श्रेणी के संबंध में ही क्षति के तत्व को सम्मिलित करना उपयुक्त समझा। वर्तमान प्रकरण उस श्रेणी के अंतर्गत नहीं आता। किसी भी स्थिति में, इस वाद में उस प्रश्न

पर विचार करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि विद्वान न्यायाधीश ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अल्पवयस्क को क्षति पहुँची है।

26. सुनवाई के दौरान यह दर्शाने का एक साहसिक प्रयास किया गया कि तृतीय उत्तरदाता/प्रतिवादी वस्तुतः अल्पवयस्क था ही नहीं। यह तर्क निष्पादन आवेदन 2017 की ई.ए. संख्या 65 के दीर्घ वाद-शीर्षक के आधार पर प्रस्तुत किया गया, जिसमें वर्ष 2017 में तृतीय उत्तरदाता की आयु लगभग 24 वर्ष बताई गई थी। अतः यह तर्क दिया गया कि उसने एकपक्षीय डिक्री से बहुत पहले ही वयस्कता प्राप्त कर ली होगी और इसलिए संरक्षक की नियुक्ति तथा डिक्री के शून्य होने का प्रश्न उत्पन्न ही नहीं होता।

27. उक्त तर्क केवल अस्वीकार किए जाने के लिए ही उल्लेखित किया जाना पर्याप्त है। यह स्वयं याचिकाकर्ता ही थे जिन्होंने वर्ष 2013 में वाद दायर करते समय तृतीय प्रतिवादी को अल्पवयस्क बताया था तथा उसके लिए संरक्षक की नियुक्ति की प्रार्थना की थी। अतः, स्वयं के अभिकथनों के विपरीत कोई नवीन अथवा अभिनव तर्क प्रस्तुत करने का कोई स्थान नहीं है।

28. एक अन्य तर्क यह प्रस्तुत किया गया कि किसी भी स्थिति में डिक्री केवल तृतीय उत्तरदाता के विरुद्ध ही निरस्त की जा सकती थी, अन्य सभी के विरुद्ध नहीं। किन्तु यह तर्क उस स्थिति पर लागू नहीं होता, जहाँ डिक्री विधि की दृष्टि में शून्य हो।

29. याचिकाकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता द्वारा मद्रास उच्च न्यायालय की द्वैध पीठ के निर्णय *लंका सन्यासी बनाम लंका येरन नायडू*⁴ पर किया गया भरोसा अनुचित है। *लंका सन्यासी* (उपर्युक्त) में प्रश्न यह था कि क्या कोई ऐसा व्यक्ति, जो वाद में पारित समझौता डिक्री की तिथि तक वयस्क हो चुका था, बाद में दायर वाद में उस समझौता डिक्री को चुनौती देने का अधिकारी है। उस पश्चात्त्वर्ती वाद को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा डिक्री कर दिया गया था और द्वितीय अपील पर विचार करते हुए उच्च न्यायालय ने यह प्रतिपादित

किया कि केवल यह तथ्य कि वाद की लंबितता के दौरान कोई अल्पवयस्क प्रतिवादी वयस्क हो गया, किन्तु उसने स्वयं प्रतिरक्षण जारी रखने तथा अपने *वादकालीन संरक्षक* को पदमुक्त कराने का विकल्प नहीं चुना, अपने आप में यह घोषित कराने के लिए पर्याप्त नहीं है कि वाद में पारित निर्णय उस पर बाध्यकारी नहीं है। उक्त प्रकरण में आदेश XXXII, नियम 3 के उपबंधों का कोई निर्णायक महत्व नहीं था।

30. याचिकाकर्ताओं द्वारा आश्रित त्रावणकोर-कोचीन उच्च न्यायालय का निर्णय *औसेफ जोसेफ बनाम थोमा ईथम्मा*⁵ याचिकाकर्ताओं की सहायता करने के स्थान पर, आक्षेपित आदेश में अपनाए गए दृष्टिकोण की शुद्धता की ही पुष्टि करता है।

31. *दिव्य दीप सिंह तथा अन्य बनाम राम बचन मिश्र तथा अन्य*⁶ में निर्णय इस प्रश्न से संबंधित था कि क्या आदेश XXXII, नियम 3 के अंतर्गत अल्पवयस्क के लिए संरक्षक की नियुक्ति से प्राकृतिक संरक्षक का अधिकार समाप्त हो जाता है। इसका उत्तर स्वयंसिद्ध था और उसका वर्तमान विवाद से कोई सरोकार नहीं है।

32. याचिकाकर्ताओं द्वारा आश्रित राजस्थान उच्च न्यायालय का निर्णय *आनंदराम तथा अन्य बनाम माधोलाल तथा अन्य*⁷ अल्पवयस्क को हुई क्षति के प्रश्न से संबंधित था, विशेष रूप से उस परिस्थिति में जहाँ पिता ने अल्पवयस्कों की ओर से लिखित कथन प्रस्तुत कर आंशिक प्रतिफल की प्राप्ति स्वीकार की थी। *रंगम्मल बनाम अल्पवयस्क अप्पासामी*⁸ में यह तथ्यात्मक निष्कर्ष दर्ज किया गया था कि वाद में अल्पवयस्क के हितों की पर्याप्त रूप से रक्षा की गई थी। अतः, याचिकाकर्ताओं द्वारा उद्धृत इन निर्णयों में से कोई भी उनके पक्ष को आगे नहीं बढ़ाता।

5 एआईआर 1956 टीसी 26

6 (1997) 1 एससीसी 504

7 एआईआर 1960 राज 189

8 85 कानून साप्ताहिक 574

33. अतः, हमें उच्च न्यायालय के आदेश में ऐसी कोई अवैधता दृष्टिगोचर नहीं होती, जो संविधान के कंडिका 136 के अंतर्गत हमारे हस्तक्षेप को आवश्यक बनाए। परिणामस्वरूप, यह विशेष अनुमति याचिका निरस्त की जाती है।

देविका गुजराल

विशेष अनुमति याचिका निरस्त की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नहीं किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।